'स्त्रैणता' की कविता

– अपर्णा ए./ प्रभाकरन हेब्बार इल्लत

(1)

पर्यावरण संबंधी दार्शनिक धाराएं जीवन में होने वाली असंगतियों को या शोषण–आधिपत्य की विकरालता के विभिन्न कोनों को संबोधित करती हैं। पूंजीवादी, उपभोगवादी, वर्चस्ववादी, हिंसात्मक प्रवृत्ति के घातक प्रभावों से ये धाराएं हमें मुखातिब कराती हैं। पर्यावरणीय स्त्रीवाद अपने मूल में स्त्री और प्रकृति पर (में) होने वाले पितृसत्तात्मक आतंक के विविध स्वरूपों को समझने का प्रयास करता है। प्रकृति के भीषण शोषण से उत्पन्न जीवन की अपदस्त स्थितियां स्त्री की ज़िंदगी में अधिक आघात पहुंचाती हैं और पितृसत्तामक अर्थसत्ता दोनों के भीतर की उर्वरता (स्त्रैणता) को नष्ट–भ्रष्ट करती है। एक ओर कॉरपोरेट खेती के पुख्ता हो जाने के वर्तमान में लाभ की लिप्सा से प्रेरित होकर रासायनिक उर्वरकों, एकलखेती आदि के माध्यम से धरती बंजर होती जा रही है तथा प्रकृति की स्वाभाविक संरचना भी सदा के लिए नष्ट होती जा रही है। इस ह्रास–नष्ट के समीकरण को इस प्रकार व्याख्यापित किया जा सकता है कि मिट्टी का बंजर हो जाना, जीवन का बंजर हो जाना ही है, उसके पुनरुज्जीवन की संभावना को खत्म करना, जीवन की निर्माणकारी शक्ति को खो देना ही होता है। इससे मानवेतर जीवरूपों (जैविक एवं अजैविक) का अतिजीवन भी असंभव होता जा रहा है। प्रकृति के व्यापक दोहन से उसके चाक्रिक स्वभाव में भी बदलाव आने लगा है। सार यह है कि प्रकृति के पुनःसर्जन की कला हमेशा के लिए घिस–घिसकर नष्ट होती जा रही है। यह वैज्ञानिक तथ्य है कि व्यापक जैविक श्रृंखला के मध्य प्रकृति में जीवन की समृद्धि संभव होती है, पर सतत शोषण के माध्यम से जैव–वैविध्य की रंगीनता और जैव–श्रृंखला की बारीकी कड़ियां एक–एक करके तुड़ती चली जा रही हैं, इसके लिए हमारा समय साक्षी है।

पितृसत्ता द्वारा प्रकृति पर आधिपत्य स्थापित करने की प्रवृत्ति का प्रबल रूप किसानी में हम देख सकते हैं। किसानी में ज़मीन पर अधिकार जमाने के तत्व के साथ–साथ उसके उत्पादन की प्रक्रिया में नियंत्रण लाने का भाव अंतर्लीन है। परिवार नामक संस्था के खड़े हो जाने के बाद ज़िंदगी की अनिवार्यताओं की वजह से स्त्री घर के भीतर रही और खेत में काम करने वाला पुरुष का एकाधिकार मिट्टी पर स्थापित हो भी गया। घर के भीतर परिवार का पालन–पोषण करती स्त्री के श्रम का अवमूल्यन हुआ तथा संपत्ति पर से उसका अधिकार धीरे–धीरे खिसकता चला गया, सारे अधिकार और संपत्ति पुरुष की मुट्ठी में चले गए। इससे अपने वंश/कुल के अंदर संपत्ति को हस्तांतरित करने की सांस्कृतिक स्थिति विकसित हुई। यह इतिहास की बात है। इतिहास के इस मोड़ पर स्त्री–पुरुष के बीच के संबंधों का स्तरीकरण हुआ और दोनों के बीच के संबंधों में मालिकाना–गुलामी की भावना प्रबल होती गई। परिवार नामक सामाजिक संस्था ने इस संबंध को और रूढ़ बना दिया है। इस रूढ़ता से खेती के विकास के साथ ही प्रकृति और स्त्री पर पुरुष का वर्चस्व स्थापित हो गया, जिसका उत्तरोत्तर विकास होता गया। इसे एंगल्स ने 'परिवार निजी संपत्ति और राज्य की उत्पत्ति' नामक अपनी रचना में तर्क के साथ पेश किया है।[1]

स्त्रीवाद उस सामाजिक–सांस्कृतिक आन्दोलन का नाम है, जो पितृसत्तात्मक शक्तियों का प्रतिरोध करते हुए स्त्री मुक्ति का नारा बुलंद करता है। असमानता, अस्वतंत्रता, भ्रातृत्व–हीनता, शोषण व दमन पर आधारित पुरुष वर्चस्ववादी सामाजिक–सांस्कृतिक व्यवस्था को विमर्श की भाषा में पितृसत्तात्मकता के रूप में सूचित किया जाता है। इसके मुकाबले पर्यावरणीय दर्शन जीवन और प्रकृति की जैविकता को प्रतिष्ठित करने का मतवाद है। यह इस बात की पैरोकारी करता है कि मानव का इतर प्रकृति के साथ संबंध लोकतंत्रात्मक हो, एक दूसरे के जैविक मूल्य का अंगीकार हो, सबके जीने या रहने के नैसर्गिक अधिकार की रक्षा हो। पर्यावरणीय स्त्रीवाद भी इस दृष्टिकोण का वैचारिक विस्तार है। इस शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग फ्रांस्वा द यूबोण के द्वारा

1974 में अपनी रचना 'ले फेमिनिस्मे ओ ला मोर्ट'(फेमिनिज्म अथवा मृत्यु) में किया गया है। आपने यह पहचाना कि वर्तमान पूंजीवादी व्यवस्था में स्त्री और प्रकृति दोनों शोषण एवं दमन का शिकार होता जा रहा है। इस आधिपत्य से इन दोनों की स्वतंत्रता या मुक्ति ही पर्यावरणीय स्त्रीवाद का मकसद है। पर्यावरणीय स्त्रीवादियों का मानना है कि इस लक्ष्य की पूर्ति केलिए पर्यावरणवादियों तथा स्त्रीवादियों को मिलकर अपना विचार प्रसारित किया जाना चाहिए। प्रकृति–स्त्री संबंध और पितृसत्ता के स्वरूप निर्धारण के अकादमिक प्रयासों के परिणाम स्वरूप पर्यावरणीय स्त्रीवाद की चार प्रमुख धाराएं विकसित हुई हैं– उदारवादी पर्यावरणीय स्त्रीवाद (लिबरल इको–फेमिनिज्म), सांस्कृतिक पर्यावरणीय स्त्रीवाद (कल्चरल इको–फेमिनिज्म), सामाजिक पर्यावरणीय स्त्रीवाद (सोशियल इको–फेमिनिज्म) और समाजवादी या मार्क्सवादी पर्यावरणीय स्त्रीवाद (सोशियलिस्ट/मार्क्सिस्ट इको–फेमिनिज्म)।

पर्यावरणीय स्त्रीवाद सामान्यतः मानव–केन्द्रित दृष्टि को नकारता है तो दूसरी ओर उस पुरुष–केन्द्रित दृष्टि का भी विरोध करता है, जो स्त्री के समुचित विकास में अवरोध या रुकावट पैदा करती है। इसके मूल में मानव की दुआधारी चिंतन–पद्धति कार्यरत है। द्वैतवाद पर आधारित जीवन दर्शन मनुष्य–प्रकृति, पुरुष–स्त्री, संस्कृति–प्रकृति जैसी सोपानीकृत द्वैतताओं का सृजन करता है। संरचनात्मक दृष्टि से द्वैत की इकाइयों में किसी एक का दूसरे पर आधिपत्य रहता है। यह वर्चस्व पितृसत्ता के रूप में जीवन के विविध आयामों में परिलक्षित है। पर्यावरणीय स्त्रीवाद इसलिए पुरुषवर्चस्ववादी व्यवस्था के साथ 'पुरुषत्व' के द्वारा सृजित आर्थिक तंत्र के खिलाफ़ भी खड़ा रहता है, जो प्रकृति को एक माल या उपभोग वस्तु में रूपांतरित करता है।

'सांस्कृतिक पर्यावरणीय स्त्रीवाद' के अनुसार स्त्री और प्रकृति दोनों में नैसर्गिक रूप से कुछ विशेष गुण विद्यमान हैं, जो इस धरा के जीवन को गत्यात्मकता प्रदान करने केलिए अत्यंत आवश्यक है। स्त्री शब्द अपने आपमें 'प्रकृति' का ही पर्यायवाची शब्द है। प्रस्तुत संस्कृत शब्द

प्रकृति के तीन गुण; यानी सत्व गुण (स्), तमो गुण (त्) और रजो गुण (र्) के सम्मिश्रण से बना है। अतः स्त्री में वही गुण है, जो प्रकृति में समाहित है। इस दृष्टि से देखे जाने पर स्पष्ट होता है कि स्त्री और प्रकृति दोनों सर्जनात्मक गुण के स्तर पर समान हैं और उसी के बल पर दोनों जीवन की सृष्टि एवं पृथ्वी की उर्वरता को बनाए रखने की क्षमता से युक्त हैं। इसलिए 'स्त्री' का सांस्कृतिक लक्षण कभी भी विनाशकारी, शोषक, अपक्षयी और हिंसक नहीं होता है। जिस प्रकार प्रकृति अपनी संतानों का पालन–पोषण करती है, उसी प्रकार स्त्री अपने बाल–बच्चों की देख–भाल करती है। इसके साथ ही स्त्री और प्रकृति दोनों में जैविक समानता है, जैविक प्रतिभासों की क्रमिकता है, पुनर्सर्जन की दक्षता है, साकल्यात्मक सक्रियता है। ध्वंसात्मकता सृजनात्मकता का विलोम है, जो 'पुरुष' में मौजूद है। इसलिए पुरुष के द्वारा सृजित आधुनिक, औद्योगिकीकृत, उपभोगवादी, पूंजीवादी सभ्यता में ध्वंसता की छाप है। इसमें कोई संदेह नहीं है कि इस पृथ्वी में जीवन को स्वस्थ व सुन्दर बनाने केलिए पुरुषसत्तात्मक ध्वंसता के स्थान पर स्त्रीत्व की सृजन क्षमता की ज़रूरत है। अतः सबके भीतर 'स्त्रीत्व' का विकास हो, इससे ही धरती पर (में) सम्पूर्ण जीवरूपों का अतिजीवन संभव हो जाएगा। यही सांस्कृतिक पर्यावरणीय स्त्रीवादी चिंतन का निचोड़ कहा जा सकता है। इससे हटकर सामाजिक पर्यावरणीय स्त्रीवाद प्रकृति और स्त्री के बीच के संबंधों की श्रेणीबद्धता को सामाजिक व्यवस्था का उत्पाद मानता है। मैं इस संदर्भ में जोड़ देना चाहती हूं कि उपभोगवाद, औद्योगीकरण आदि प्रभुत्वाकामी सत्ता के विभिन्न संस्करण हैं, जो एक साथ स्त्री और प्रकृति दोनों के ऊपर हावी हो रहे हैं। सामाजिक पर्यावरणीय स्त्रीवाद इस प्रकार की सभी वर्चस्ववादी शक्तियों का उन्मूलन कर सामाजिक परिवर्तन के ज़रिए स्त्री और प्रकृति को शोषण व दमन से बचाने का आह्वान करता है। इसलिए सामाजिक,आर्थिक आदि सभी क्षेत्रों में मौजूद श्रेणीबद्धता के खिलाफ़ संघर्ष करते हुए समता पर आधारित सामाजिक व्यवस्था की स्थापना इसके मूल में मौजूद है। इसके अनुसरण में मार्क्सवादी या समाजवादी पर्यावरणीय

स्त्रीवाद भी, पर्यावरणीय स्त्रीवाद की एक ऐसी शाखा है, जो सामाजिक पर्यावरणीय स्त्रीवाद से उपजा है और मार्क्सवादी सिद्धांतों के आधार पर पर्यावरणीय समस्याओं की व्याख्या प्रस्तुत करता है, प्रकृति–स्त्री–पुरुष के बीच के संबंधों को खोलता है। यह वाद विशेष पूंजीवादी पितृसत्तात्मक व्यवस्था को स्त्री और प्रकृति दोनों की पतित अवस्था का जिम्मेवार ठहराता है। अतः सामाजिक पर्यावरणीय स्त्रीवाद के समान समाजवादी पर्यावरणीय स्त्रीवाद भी सामाजिक परिवर्तन के ज़रिए प्रकृति और स्त्री की रक्षा के मार्ग को प्रशस्त करने की वकालत करता है। इस तरह वाद विशेष के रूप में उदारवादी पर्यावरणीय स्त्रीवाद का मानना है कि स्त्री पुरुष के समान तर्कशील प्राणी है, लेकिन आर्थिक, शैक्षिक, तकनीकी, सांस्कृतिक क्षेत्र में अवसरों की कमी या अभाव के कारण वह अपनी भीतरी क्षमता से अनभिज्ञ है। अतः स्त्री को समान अवसर प्रदान किए जाने पर जीवन के विविध क्षेत्रों में सकारात्मक प्रगति हो सकती है। पर्यावरणीय स्त्रीवाद की यह शाखा सतही पर्यावरणवाद (शालो इकोलजी) का पक्षधर है, जो प्रचलित व्यवस्था को बनाए रखते हुए विज्ञान एवं तकनीकी की सहायता से पर्यावरणीय समस्याओं से मुक्ति के मार्ग का अनुधावन करता है। इन धाराओं के अतिरिक्त 'क्रिटिकल इको फेमिनिज्म', 'स्पिरिचुअल इको फेमिनिज्म' आदि पर्यावरणीय स्त्रीवाद की कई अन्य शाखाएं विकसित हुई हैं। इसमें "क्रिटिकल इको फेमिनिज्म पर्यावरणीय स्त्रीवाद का एक अद्यतन संस्करण है, जो नई सहस्राब्दी की चुनौतियों के साथ ही ज्ञान की मुक्ति,समानता और एकता की संकल्पनाओं को पूरा करने के लिए प्रतिबद्ध है"[2] और स्पिरिचुअल इको फेमिनिज्म वह धारा है, जिसमें आध्यात्मिकता के साथ पर्यावरणीय स्त्रीवाद अपना रिश्ता जोड़ता है।

इससे स्पष्ट होता है कि पर्यावरणीय स्त्रीवाद एक ऐसा दर्शन है, जो सत्तात्मक शोषण के चंगुल में फंसी प्रकृति और स्त्री को बचाने का दार्शनिक आधार बुनता है। पर्यावरणीय स्त्रीवाद के अनुसार "वर्चस्ववादी वर्तमान समाज के भीतर स्त्रियों की कोई मुक्ति नहीं हो सकती है और

पर्यावरणीय संकट का भी कोई समाधान नहीं हो सकता है।"[3] अतः प्रकृति–पुरुष–स्त्री के संबंधों में परिवर्तन विचारधारात्मक स्तर पर हो, तभी इस संकट से मुक्ति मिल सकती है, जिसका काव्यात्मक अंकन समकालीन हिंदी कविता में प्रचुर मात्रा में हुआ है। मुख्यतः प्रकृति/स्त्री के भीतर की सर्जनात्मकता (स्त्रैणता) को समकालीन कविता किस प्रकार संबोधित करती है, जानने का प्रयास आगे किया जा रहा है।

(2)

समकालीन कवि प्रेम कासलीवाल की 'अपहृत नदी'[4] शीर्षक कविता अब मेरे जेहन में है। सत्तात्मक ताकतों के द्वारा नदी के अपहृद होने के पश्चात् के जीवनानुभवों को कविता अनुवाचकों से बांटती है। अपहृत होते जाने के पीछे सक्रिय ताकतों की पहचान कविता करती है और बताती है कि उसके पीछे मानव की भोगपरकता काम करती है, इसके प्रसार में शोषण– आधिपत्य की हिंसात्मक वृत्तियां काम करती हैं। व्यापक दृष्टि में यह दुर्बल के प्रति सबल या ताकतवर का हमला है, जिसे अलोकतांत्रिक वर्तमान जीवन पद्धति के रूप में देखा जाना चाहिए। इस आलोक में उपर्युक्त कविता पर विचार करें तो लगता है कि नदी की ज़िंदगी की सक्रियता उसमें पानी के भरे–भरे होने में है। 'बिन पानी सब सून हो जाता है।' जो नदी पहले हरी–भरी पड़ी थी, आज क्यों सूखकर नष्ट हो गई है? कविता का कल्पनात्मक सवाल हमें सोचने के लिए विवश तो करती है। कविता में प्रयुक्त भूतकालिक सहायक क्रिया (थी) के माध्यम से अतीत के वैभव की ओर कविता हमारा ध्यान प्रारंभ से ही आकृष्ट करती है। इसके माध्यम से वर्तमानता की नदी की शुष्कता के प्रति जीवंत बोध प्रस्तुत करना कविता का ध्येय रहा है। नदी कविता की लड़की की आंखों में सौंदर्य का प्रतीक तो है ही, पर नन्हीं–मुन्हीं हाथों से बनाई नाव को बहाने हेतु जब वह नदी तट आती है तो हैरानी और दुख का अनुभव एक साथ करती है। लड़की की आंखों से निहारने पर लगता है कि वह नदी के साथ दोस्ती जमाने के विचार से या थोड़ी देर के लिए ही

सही, उसके साथ खेल–कूद कर जाने की तमन्ने से प्रेरित होकर आती है, लेकिन लड़की संतोष के स्थान पर अनुताप का अनुभव करती है। कविता यह भी बताती है कि प्रकृति की सर्जनात्मकता के अभाव में मानव का दिल किस प्रकार कुंठित होता है, असंतोष का शिकार हो जाता है। प्रकृति के पास अपने को सतत सृजित करने की ताकत है, पर मानव के निरंतर हस्तक्षेप से नदी का वैभव खत्म हो जाता है। कविता अपने अंतरंग में नदी के वैभव के साथ प्रस्तुत होने का संकल्प वहन करती है। प्रकृति की निर्माणकारी शक्ति कैसे अवरुद्ध हो जाती है, कविता उसकी छान–बीन करने के लिए यहां बाध्य करती है। इसी प्रकार समकालीन कविता अन्यत्र कई प्रसंगों पर अपहरण, लूट–कसूट से पीड़ित नदी की तस्वीर पेश करती है। कवि रामदयाल मुंडा की कविताएं इसका एक उत्तम उदाहरण है। कविता की पंक्तियां हैं– "उसे बांधकर ले जा रहे थे/राजा के सेनानी/और नदी/छाती पीटकर रो रही थी/लौटा दो,लौटा दो/मुझे मेरा पानी।"[5] अपनी एक अन्य कविता में वे लिखते हैं– "नदी/ना,ना करती रह गयी–/उस मनचले ने उसका/लूट लिया पानी।"[6] ध्यान रखने की बात यह है कि नदी एक विस्तृत–व्यापक परितंत्र है और प्रकृति की उर्वरता का प्रतीक है। अतः उसके मर–मिटने से संपूर्ण प्रकृति/जीवन की आबोहवा में परिवर्तन, जैविक श्रृंखला में असंतुलन और ऊषरता की स्थिति पैदा होती है। इससे मृत्यु या संकट का बादल जीवन में मंडराने लगता है। जैविक–अजैविक तंत्र के साथ–साथ नदी अपने आप में एक सामाजिक तंत्र, संस्कृति या जीवन पद्धति भी है, अर्थात् वह मूल्य, भाषा, पहचान, मिथक, मुहावरा, देवता, मंत्र–श्लोक, परंपरा, अतीत–स्मृति, वर्तमान, भविष्य इत्यादि सब कुछ है, जो जीवन में गतिशीलता, लयात्मकता, संगीतात्मकता, सुंदरता, शीतलता, नमी, सांत्वना, तसल्ली, आत्मपरितोष आदि के रूप में विन्यस्थ होती है। परिणामतः उसके ध्वस्त हो जाने से प्रकृति/जीवन के सकारात्मक–सौंदर्यात्मक पक्ष विलुप्त हो जाता है। कविता इस लुप्तता/विलुप्तता को वाणी दे रही है। अतः कविता की प्रारंभिक पंक्ति से ही

अभाव,संदेह आदि के भाव झलकते हैं। अनिश्चय स्थानवाचक सर्वनाम के द्वारा कवि स्मृति से भी धुंधली हो रही प्राकृतिक समृद्धि की याद दिलाता है। इस स्मृति की भी अपनी एक अलग राजनीति है। बीते हुए वैभव के स्मरण में आमोद से लेटती, थिरकती, गुनगुनाती नदी की तस्वीर खींचकर कविता वर्तमान की विषमता, निराशा और निरर्थकता को वाणी दे रही है।

नदी के 'अपहरण' के पीछे मानव और प्रकृति के बीच के संबंध का बदला हुआ परिवेश ज़िम्मेदार है। पूंजीवादी–अर्थकेंद्रित–भोग–विलासवादी आधुनिक दौर में मनुष्य और प्रकृति के बीच के रागात्मक, अद्वैतात्मक, आत्मपरक संबंध संवेदनशून्य, द्वैतात्मक, वस्तुपरक होता जा रहा है। पूंजीवादी शक्तियों की इस निष्ठुरता या निर्ममता ही आज धरती और उसके संपूर्ण जीवन को खतरे के मुंह में लाकर खड़ा करती है। इस स्थिति में कविता की लड़की प्राकृतिक वातावरण को तलाशती है, उसको पूर्ण रूप से पुनः प्राप्त करने की ललक व्यक्त करती है, उसके साथ मिलने–जुलने–बतियाने–खेलने की आशा प्रकट करती है। नदी से उसको पानी के बजाय पत्थरों का सूखापन ही मिलता है। इस व्याकुलता से आतंकित होकर कभी लड़की उदास हो जाती है, अपने घने लंबे बाल नोंचती है, कभी बुदबुदाती है। लड़की में नैसर्गिक तौर पर प्रकृति के प्रति एक विशेष प्रकार की संपृक्ति है, इसलिए ही वह प्रकृति से जुड़कर आत्मपरितोष का अनुभव करती है। कविता का वक्ता लड़का नहीं है, लड़की है। कविता की आलोचना के दौरान मुझे लगता है कि वह इसलिए है कि कविता अपनी प्रतीकावली के माध्यम से स्त्रीत्व या सर्जनशीलता को प्रतीकवत् करती है। नदी भी अपने भीतर एक स्त्रैणता को ले चलती थी, चारों तरफ़ जैविकता को प्रसारित किया करती थी। प्रकृति और लड़की के माध्यम से वैभवहीनता और परितोषहीनता के भाव को कविता हमारे सामने व्यक्त करती है। नदी के सूखने के साथ ही लड़की का मन भी सूखता है, वह अतृप्ति का शिकार होकर जीवन की समृद्धि से वंचित रह जाती है। लड़की को आत्मप्रसन्नता सच्चे

अर्थों में अन्यत्र कहीं से नहीं, प्रकृति के संस्पर्श से प्राप्त होती है। कविता का सवाल इतना है कि जीवन के सौरभ्य से लड़की को वंचित करने के लिए ज़िम्मेदार कौन है?

कविता अपने अंदर अभावों की एक लंबी दास्तान सृजित करती है। नदी में नाव बहाने के ज़रिए लड़की अपनी सर्जनात्मक ललक को तृप्त करना चाहती है। किन्तु नदी के न रहने के कारण वह अपने इस निर्माणात्मक विस्तार में असफल रहती है। ऐसी स्थिति में उससे जीवन के कई सुंदर पल छिन जाते हैं। काव्यात्मक भाषा में नदी में लहरों के न रहने पर उसके अंदर भी खुशी की लहरें नहीं उठती हैं। कविता यह भी ध्वनित करती है कि प्रकृति मनुष्य को हठात् आकर्षित करती है। प्रकृति के साथ निरंतर संवाद स्थापित करना उसकी जैविक अनिवार्यता है। कविता की बच्ची भी प्रकृति के साथ निरंतर संवाद में मग्न है। इसी संवादात्मकता ने उसे नदी तट की ओर खींचा है। गौर की बात यह है कि वहां पहुंचने के बाद ही वह इस सच्चाई से वाकिफ़ होती है कि नदी न के बराबर है। इस प्रकार प्रकृति के वीरान हो जाने का चित्रण काव्यात्मक भाषा में इस प्रकार व्यक्त किया जा सकता है– "नक्शे में जंगल हैं पेड़ नहीं/नक्शे में नदियां हैं पानी नहीं/नक्शे में पहाड़ हैं पत्थर नहीं/नक्शे में देश है लोग नहीं।"[7]

कविता की लड़की नदी के साथ भावात्मक–रागात्मक संबंध स्थापित करते हुए उसे 'मां' मानती है। यहां प्रकृति का मानवीकरण और उस पर स्त्रैणता को अध्यारोपित किया गया है, जो सूक्ष्मतः प्रकृति–स्त्री के बीच की समानांतरता को द्योतित करती है। इस समानता का अंकन हिंदी काव्य जगत में कई जगहों पर देखने को मिलता है। ज्योति चावला की 'जामुन का पेड़' शीर्षक कविता में अभिव्यक्त पेड़ कवयित्री केलिए 'मां' की सांत्वना, तसल्ली, ममत्व, सुरक्षा, भोजन इत्यादि सब कुछ है।[8] व्यापक परिदृश्य में यह स्पष्ट होता है कि कविता में प्रयुक्त नदी शब्द के भीतर केवल नदी ही नहीं, बल्कि संपूर्ण प्रकृति का साक्षात् स्वरूप समाहित है। अर्थात् नदी समूची प्रकृति व जीवन की समग्रता–साकल्यता का प्रतीक है। वर्तमान समय में पहाड़, जंगल

आदि सबका अपहरण हो रहा है या सबके आंतरिक मूल्य, जैविक अधिकार तथा उर्वरता निष्कासित हो रही है। इसकी काव्यात्मक अभिव्यक्ति के सशक्त सबूत के रूप में कात्यायनी की मशहूर कविता 'एक भूतपूर्व नगरवधू की दुर्गपति से प्रार्थना'[9] को ले सकते हैं। पुरुषसत्तात्मक व्यवस्था के भीतर सदियों से आबद्ध होकर वहां से मुक्ति केलिए तड़पती स्त्री की विवशता कविता दर्शाती है। पुरुषत्व के द्वारा सृजित शोषणकारी तंत्र में अपनी जैविकता–सर्जनात्मकता का पिस–पिसकर भस्म होते देखकर कविता की स्त्री कुंठित होती है। दूसरों को अपने दैहिक सौंदर्य की दावत देकर उन्हें खुश रखते हुए, श्रेष्ठियों–महाजनों की सेवा–सुश्रूषा करती–करती, उन के लिए सदैव हंसती–मुस्कुराती, अदाएं दिखाती हुई, सबको मदोन्मत्त करती हुई पूर्णतः स्वयं एक मनोरंजन की सामग्री बनकर उसका दम घुट रही है, उसकी उर्वरता खत्म होती जा रही है। साथ ही उसको हर पल यह एहसास भी कचोटता है कि अदृश्य परकोटों–बुर्जों वाले, भोगविलास के कोलाहल से गूंजती, कुरूप, असंवेदनशील पितृसत्तात्मक दुनिया के लिए वह केवल एक भोग्य वस्तु है, इससे आगे यहां उसकी कोई अस्मिता, पहचान या मूल्य भी नहीं है। इसलिए वह इस दमन चक्र से बाहर अपनी नैसर्गिकता/जैविकता/स्वाभाविकता की ओर वापस जाना चाहती है, अपनी 'जैविक भूमिका' को निभाना चाहती है। वह प्रकृति की गोद में जाकर अपने सर्जनात्मक विस्तार के ज़रिए आत्मपरितोष का अनुभव करना चाहती है। अपनी ज़िंदगी में कम–से–कम एक बार ही सही अपने लिए नाचना–गाना चाहती है, अपने स्तनों को प्यासे–विकल शिशु के अधरों तक ले जाना चाहती है, पेड़ो–पौधों–फ़सलों की ओर जाना चाहती है, तारों से टपकती ओस सनी रोशनी में भीगना चाहती है, और पत्तों की मर्मर ध्वनि को सुनना चाहती है। इन सबके ज़रिए वह अपने होने का अनुभव करना, अपनी ज़िंदगी को सार्थक बनाना चाहती है। प्रकृति की सजीव सत्ता के साथ कविता की नायिका जुड़ना चाहती है, जिससे वह अपनी खोई हुई स्त्रैणता को पुनः हस्तगत कर सके। इस प्रकार यह कविता स्त्रैणता की वकालत करने के साथ–साथ स्त्री और

प्रकृति के बीच की निकटता को भी वाणी दे रही है। इस निकटता के कारण ही वह बाह्य दृष्टि से संपन्न जन अरण्य में रहते हुए भी भीतर से प्राकृतिक प्राण–संगीत का अनुभव कर रही है। कविता शोषण की एक लंबी ऐतिहासिक शृंखला की ओर इशारा देती है, जो शताब्दियों पहले से शुरु हुई थी। अनंत काल से अपनी नैसर्गिकता से हाशियेकृत स्त्री की पीड़ा, बेचैनी, विकलता, विकरालता, नीरसता, निष्क्रियता आदि को स्वर देती हुई कविता स्वतंत्र होकर जीने व विकसित होने के जैविक अधिकार की मांग करती है। कविता इस बात को भी चिन्हित करती है कि पितृसत्तात्मक किले में एक बार आबद्ध हो जाने के पश्चात् वहां से मुक्ति पाना कितना मुश्किल का कार्य है। सत्तात्मक दुर्ग के अदृश्य दीवारों पर गवाक्ष या द्वार टटोलते–टटोलते तन–मन से निढ़ालती नगरवधू अपनी नैसर्गिक स्त्रैणता को पुनः प्राप्त करने की उत्कट अभिलाषा व्यक्त करती है। अंतिम वाक्य तक आते–आते मुझे प्रतीत होता है कि सैद्धांतिक भार से विहीन होकर समकालीन हिंदी कविता प्रकृति–स्त्री की 'स्त्रैणता' को बचाए रखने का कल्पनात्मक संघर्ष विविध स्तर पर करती रहती है, बस इतना ही।

संदर्भः

1. एंगेल्स, फ्रेडरिक. *परिवार निजी संपत्ति और राज्य की उत्पत्ति.* संपादक. मुरली मनोहर प्रसाद सिंह. दिल्लीः ग्रंथ शिल्पी प्रकाशन, 2008, पृ. 186-208. मुद्रित.
2. Critical ecofeminism is an updated version of ecofeminism in tune with the new millennium challenges, simultaneously committed to fulfilling the promises of liberty, equality and solidarity of the enlightenment. James, Jancy. "Ecofeminism and Its Concerns". *Natural Reverberations,* Edited by Prabhakaran Hebbar Illath. New Delhi: Vani Book Company, 2022, pp. 56. Print.
3. Women must see that there can be no liberation for them and no solution to the ecological crisis within a society whose fundamental model of relationships continues to be one of domination. Ruether, Rosemary Radford. *New Woman/ New Earth: Sexist Ideologies and Human Liberation*. New York: Seabury, 1975, pp. 204. Print.

4. कासलीवाल, प्रेम. "अपहृत नदी". *हरित कविता,* संपादक. प्रभाकरन हेब्बार इल्लत. नयी दिल्ली: वाणी प्रकाशन, 2022, पृ. 60. मुद्रित.
5. मुंडा, रामदयाल. "विरोध". *कलम को तीर होने दो.* संपादक. रमणिका गुप्ता. नई दिल्ली: वाणी प्रकाशन, 2015, पृ.32. मुद्रित.
6. मुंडा, रामदयाल. "असहायता". *कलम को तीर होने दो.* संपादक. रमणिका गुप्ता. नई दिल्ली: वाणी प्रकाशन, 2015, पृ .36. मुद्रित.
7. सक्सेना, नरेश. "नक्शे". *कवि ने कहा: चुनी हुई कविताएं.* नयी दिल्ली: किताबघर प्रकाशन, 2014, पृ. 101. मुद्रित.
8. कई बार मां से रूठकर घंटों बैठी हूं मैं इस पेड़ के नीचे
   और तब भरी दोपहर में इस पेड़ ने दी है मुझे
   मां की आंचल सी छांव और भर पेट भोजन।
   चावला, ज्योति. *आलोचना.* अंक-38. (जुलाई-सितंबर 2010): पृ. 84. मुद्रित.
9. कात्यायनी. *इस पौरुषपूर्ण समय में.* नयी दिल्ली: वाणी प्रकाशन, 1999, पृ.65 . मुद्रित.

हिंदी विभाग, कोच्चिन विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, कोच्ची- 682022, मोबाइल नं: 9645805361, ईमेल- anilaparna93@gmail.com